

गुप्तोत्तरकालीन भू-स्वामित्व एवं राजस्व व्यवस्था Post-Gupta Period Land Ownership and Revenue System

Paper Submission: 05/07/2021, Date of Acceptance: 15/07/2021, Date of Publication: 24/07/2021



अरविन्द कुमार चौधरी

पूर्व शोध छात्र
प्राचीन इतिहास विभाग,
डॉ० राम मनोहर लोहिया
अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

गुप्तोत्तरकालीन भूस्वामित्व संबंधी तीन पृथक अवधारणाएं अर्थात् व्यक्तिगत भूस्वामित्व, राजा एवं राज्य का भूस्वामित्व और सामूहिक/सामुदायिक भूस्वामित्व, ये तीनों ही एक साथ न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र प्रचलित रहीं। परन्तु कृषक अपनी भूमि के स्वामी बने रहे, लेकिन भूमि स्वामित्व का स्वरूप उच्च स्वामित्व की स्थापना के कारण बदल गया। भूमि अनुदानों ने किसानों की स्वतंत्र स्थिति/ओहदे को भूमि पर उच्च अधिकारी की स्थापना के द्वारा क्षतिग्रस्त कर दिया। अब, स्वतंत्र भू-स्वामी काश्तकारों में परिवर्तित हो गये और अधीनस्थ किसानों का एक वर्ग बन गया। लगभग 800ई० के बाद से राजा ने सामंतवादी भू-स्वामियों को राजस्व संबंधी और प्रशासनिक अधिकारों के साथ स्वामित्व के अधिकार देना भी आरम्भ कर दिया जो समय के साथ वंशानुगत हो गये। भूमि अनुदानों से भूमि पर पदानुक्रमी अधिकार और उप-सामंतशाही का विकास हुआ। राजस्व प्रणाली पर सामंतवादी अर्थव्यवस्था के कारण अत्यधिक दबाव भी था।

Three different concepts of land ownership in the post-Gupta period i.e. individual land ownership, king and state land ownership and collective / community land ownership, all three together in more or less form were prevalent everywhere. But the cultivators remained the owners of their land, but the nature of land ownership changed due to the establishment of higher ownership. The land grants damaged the independent status/position of the peasants by the establishment of a higher authority on the land. Now, the independent landowners got converted into tenants and subordinates became a class of peasants. From about 800 AD onwards, the king started giving ownership rights along with revenue and administrative rights to the feudalist landowners which became hereditary over time. Land grants led to the development of hierarchical rights over land and sub-feudalism. The revenue system was also under immense pressure due to the feudal economy.

मुख्य शब्द : भू-स्वामित्व, राजस्व व्यवस्था, सामंत, जमींदार, कृषक, निजी सम्पत्ति, सम्प्रभु राजा ।

Land Ownership, Revenue System, Feudatories, Zamindars, Farmers, Private Property, Sovereign King.

प्रस्तावना

अर्थ व्यवस्था में कृषि का प्रमुख स्थान होने के कारण भूमि की मांग एवं उसके महत्व में वृद्धि होना स्वाभाविक था। भूस्वामित्व विषयक अवधारणाओं एवं परंपराओं से संबंधित प्राचीनतम उल्लेख तो ऋग्वेद एवं उत्तरवैदिक साहित्य में मिलते हैं, परन्तु इससे संबंधित नियम सर्वप्रथम धर्म सूत्रकारों ने बनाए जिन्हें अनुवर्ती कालों में स्मृतिकारों, टीकाकारों तथा अन्य लेखकों ने विकसित, संशोधित एवं परिवर्धित किया था। इस संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में भूस्वामित्व संबंधी तीन पृथक अवधारणाएं अर्थात् व्यक्तिगत भूस्वामित्व, राजा एवं राज्य का भूस्वामित्व और सामूहिक/सामुदायिक भूस्वामित्व, ये तीनों ही एक साथ न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र प्रचलित रहीं।

अध्ययन का उद्देश्य

पूर्व मध्य काल में अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि होने के कारण समाज में भूमि का महत्व बढ़ गया। भूमि सामाजिक प्रतीक का एक आधार बन गई। कृषि तथा भूमि के बढ़ते महत्व ने लोगों की आवश्यकताओं को स्थानीय स्तर पर पूरा करने का सहयोग प्रदान किया। प्रस्तावित शोध पत्र में

गुप्तोत्तरकालीन भू-स्वामित्व एवं राजस्व व्यवस्था को चिन्हित करने का भी प्रयास किया गया है।

निजी-भूस्वामित्व

व्यक्तिगत भूस्वामित्व में भूमि के क्रय-विक्रय, बंधक रखने, विभाजन करने एवं दान देने आदि के अधिकार शामिल हैं। मैक्डोनेल एवं कीथ¹ बाडेन पोवेल², के.पी. जायसवाल³, पी.एन.बनर्जी⁴, यू.एन. घोषाल⁵ तथा लल्लन जी गोपाल⁶ आदि विद्वानों का यह मत तर्कसंगत लगता है कि प्राचीन भारत में भूमि पर व्यावहारिक रूप में कृषक का ही स्वामित्व होता था। किन्तु पूर्वमध्य काल में बड़ी संख्या में विभिन्न कोटियों के सामंतों, अभिजातवर्गीय जमींदारों तथा अन्य बिचौलिए भूस्वामियों के आविर्भाव के परिणामस्वरूप साधारण कृषकों की स्थिति पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा दुर्बल हो गई थी जबकि, बड़े कृषक अपनी शर्तों पर कृषकों को जमीनें देते थे। राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर राज्य में कुछ बड़े कृषक अपनी भूमियों से अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर डामर अर्थात् जागीरदार सामंत बन गए थे। ये समृद्ध एवं शक्तिशाली डामर न केवल कृषकों का शोषण करते थे, अपितु राजा के आदेशों की भी अवहेलना करने का साहस रखते थे।⁷ राजतरंगिणी⁸, बृहन्नारदीयपुराण⁹ एवं युक्तिव्यक्तिप्रकरण¹⁰ से यह भी ज्ञात होता है कि किसानों को प्रायः असुरक्षा का भय बना रहता था। टीकाकार हरदत्त ने भी इस प्रकार की परिस्थितियों का संकेत दिया है जिनमें कृषक निजी भूमि पर अधिकार बनाए रखने में कभी-कभी अपने को अक्षम पाते थे।¹¹ राजस्थान के कुछ क्षेत्रों के विषय में बताया गया है कि वहां के भूस्वामियों ने सुरक्षा पाने के उद्देश्य से अपनी जमीनें राजाओं/सामंतों को सौंप दी थी और वे अपने ही खेतों में पट्टीदार कृषकों के रूप में खेती करने लगे थे।¹²

विवेच्य काल के अनेक साहित्यिक साक्ष्यों एवं अभिलेखों से किसानों का निजी भूस्वामित्व प्रमाणित है। कृत्यकल्पतरु¹³ तथा अग्निपुराण¹⁴ ने कृषकों के व्यक्तिगत भूस्वामित्व को वैधानिक ठहराया; उन्हें अपनी जमीनों के हस्तांतरण एवं दान देने का अधिकारी माना और यह भी प्रावधान किया कि किसानों की निजी भूमियों में किसी प्रकार के (वैधानिक) हस्तक्षेप को वे (कृषक) न्यायालय में चुनौती दे सकते थे। मेधातिथि ने भी व्यक्तिगत भूस्वामित्व का समर्थन किया है।¹⁵ नीलकंठ के अनुसार जो भूमि जिसके कब्जे में होती है वही उसका स्वामी होता है और राजा केवल कर प्राप्त करने का वैधानिक अधिकारी है।¹⁶ असहाय का यह कथन कि 'राजा' द्वारा कृषकों को बीज आदि देकर अपना स्वामित्व प्राप्त करना चाहिए¹⁷ भी निजी भूस्वामित्व का संकेत देता है। क्षेमंद्रकृत देशोपदेश में एक कृपण व्यक्ति द्वारा मकान, भूमि तथा अन्य संपत्ति अर्जित करने का विवरण है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि कार्कोट वंशीय राजा चंद्रापीड के अधिकारी मंदिर निर्माण के लिए एक चर्मकार की भूमि खरीदने के लिए गए। किंतु उसने अपनी पैतृक जमीन राजा को बेचने से इन्कार कर दिया। जब चंद्रापीड को इसकी सूचना मिली, तो वह स्वयं चर्मकार के पास गया और उसने उचित मूल्य देकर उसकी जमीन खरीद ली।¹⁸ जैमिनी के मीमांसासूत्र की

व्याख्या में शबरस्वामी ने व्यक्तिगत भूस्वामित्व का समर्थन करते हुए। यह मत व्यक्त किया कि कृषक अपने खेतों के स्वामी हैं और राजा भूमि में उगने वाली सभी फसलों की सुरक्षा करने के कारण उत्पाद का एक (निर्धारित) भाग प्राप्त करने का अधिकारी है। वह (अपने राज्य की) समस्त भूमि का स्वामी नहीं है। अतः वह (दूसरों की) भूमि को हस्तारित नहीं कर सकता।¹⁹ सोमेश्वरकृत मानसोल्लास में भूम्यंक सञ्जक अधिकारी के विषय में बताया गया है कि वह अन्य कार्यों के अतिरिक्त (लोगों की निजी) जमीनों के सीमा संबंधी विवादों को भी सुलझाता था।²⁰ पूर्वमध्यकाल के कई अभिलेखों में व्यक्तिगत स्वामित्व वाले खेतों को कौटुंबक्षेत्र कहा गया है।²¹ कुछ अभिलेखों में प्रयुक्त सरक शब्द को भी निजी भू-स्वामित्व का सूचक माना गया है।²² इसी प्रकार के अन्य बहुत से साक्ष्य भी व्यक्तिगत भूस्वामित्व प्रमाणित करते हैं। किंतु पूर्वमध्य काल में साधारण कृषकों की स्थिति में गिरावट आई थी और बिचौलिए भूस्वामियों द्वारा उनके निजी भूस्वामित्व में हस्तक्षेप करना भी कोई असामान्य बात नहीं थी।

राजा का भूस्वामित्व

प्रारम्भ में प्रजा तथा राज्य को सुरक्षा देने के बदले में राजा को कृषि उत्पाद का एक भाग प्राप्त करने का अधिकारी माना गया था। वी.ए. स्मिथ²³ तथा जे.एन. समद्वार²⁴ आदि विद्वानों का भी मानना है कि प्राचीन भारत में राजा अपने राज्य की समस्त भूमि का स्वामी होता था। इसके विपरीत काशी प्रसाद जायसवाल²⁵ तथा पी.एन. बनर्जी²⁶ ने राजा के भूस्वामित्व को पूर्णतया अस्वीकार किया है। पूर्वमध्य काल में भूस्वामित्व संबंधी पूर्ववर्ती नियमों एवं परंपराओं में पर्याप्त बदलाव आ गया था। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के महत्त्व में वृद्धि हुई थी और कृषि उत्पाद ही राजाओं एवं सामंतों की शक्ति के आधार तथा सर्वप्रमुख संसाधन हो गए थे। बी.एन.एस. यादव के अनुसार पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रकारों ने तो राजा को अपने राज्य की भूमियों तथा प्रजा आदि की रक्षा करने के बदले में उत्पादन का एक भाग (षष्ठान्श या इससे कम अथवा अधिक) प्राप्त करने का अधिकारी माना था। किंतु पूर्वमध्य काल के टीकाकारों/निबंधकारों ने भूमि पर राज्य के स्वामित्व के आधार पर उसे उत्पाद का एक अंश पाने का अधिकारी ठहराया²⁷ नारदस्मृति में आए नरेन्द्रधन शब्द की टीकाकार असहाय (लगभग 700 ई.) द्वारा की गई व्याख्या यह दर्शाती है कि कृषकों का अपनी जमीनों पर स्वामित्व दुर्बल पड़ गया था।²⁸ मेधातिथि ने भी राजा के भूस्वामित्व को स्वीकार किया था, यद्यपि कुछ श्लोकों की टीका में उन्होंने कृषक के स्वामित्व का भी समर्थन किया है।²⁹ विज्ञानेश्वर ने भूमि-दानों के साथ उनके स्वामित्व के भी हस्तांतरण किए जाने के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है।³⁰ लक्ष्मीधर ने नारदस्मृति के एक श्लोक को उद्धृत करते हुए राजा के भूस्वामित्व का समर्थन किया है।³¹ परंतु अन्यत्र नारद ने स्वयं मकान और खेत को कृषक की जीविका का आधार बताते हुए राजा को दोनों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने की सलाह दी है।³² सिद्धर्षि सूरि³³ तथा देवणभट्ट³⁴ ने राजा को भूमि का सर्वोच्च

स्वामी बताया है। अलबेरुनी का विवरण भी राजा के बढ़े हुए भूस्वामित्व की पुष्टि करता है।³⁵

दबोक अभिलेख में राजा द्वारा दान में प्रदत्त भूमियों की सीमा निर्धारण के संदर्भ में राजा के खेतों (राजकीयम् क्षेत्रम्) का उल्लेख आया है।³⁶ शीलादित्य तृतीय के जेसर दानपत्राभिलेख में सरकारी भूमि में से 25 से भी अधिक पादावर्त्त जमीनें एवं दो अन्य भूखंड देने का भी विवरण है³⁷ जिन पर खेती करने आले कृषिकों के मरणोपरान्त राजा का अधिकार हो गया था।

निष्कर्षतः पूर्वमध्य काल में विभिन्न वर्गों के सामंतों के अभ्युदय से राजाओं का भू-स्वामित्व शिथिल पड़ गया था क्योंकि राजाओं की अपेक्षा सामंतों का कृषकों पर सीधा एवं अधिक नियंत्रण होता था।

सामूहिक भूस्वामित्व

पूर्वमध्य काल की सामंतीय व्यवस्था में संप्रभु राजा के अधीन रहने वाले विभिन्न कोटियों के सामंतों तथा इनसे निम्न स्तर के अभिजात कुलीन जमींदारों के अभ्युदय का सामूहिक भूस्वामित्व पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ था। ये लोग सार्वजनिक उपयोग में आने वाले पोखरों, चरागाहों, वनों, बगीचों एवं बंजर भूमियों को भी अपने अधिकार में लेने लगे थे। विद्वान ब्राह्मण, मंदिरों तथा बौद्ध-संघों को दान में दिए गए ग्रामों/भूमियों के साथ उनकी सीमाओं के भीतर स्थित वनों, तड़ागों, पोखरों, बगीचों, वनों नमक की खानों, सेतुओं बंजर भूमियों को भी हस्तांतरित कर दिया जाता था। परिणामतः सामूहिक भूस्वामित्व काफी संकुचित हो गया था।³⁸

पूर्वमध्य काल में वस्तुतः चरागाहों पर तथा कुछ सीमा तक वनों पर ही सामुदायिक अधिकार रह गया था। और कभी-कभी इन्हें भी दानग्रहीता को दे दिया जाता था। राजतरंगिणी में एक राजा द्वारा एक चरागाह का दान देने का उल्लेख है। इससे क्षुब्ध होकर एक ग्वाले ने आत्महत्या कर ली थी। इस घटना से राजा के रुख में बदलाव आया और उसने वह चरागाह पुनः स्थानीय लोगों को दे दिया था³⁹ विवेच्य काल के साक्ष्यों में सामूहिक भूस्वामित्व के संबंध में कुछ स्पष्ट विवरण प्राप्य हैं। ग्वालियर प्रशस्ति में नगर के सभी लोगों द्वारा मिलकर एक मंदिर को भूमि देने का विवरण है।⁴⁰ और सीयदोणि अभिलेख से ज्ञात होता है कि सभी नगरवासियों ने संयुक्त रूप से एक भूखंड दान में दिया था।⁴¹

सामूहिक भूस्वामित्व का समर्थन करते हुए आर०जी० बसाक ने कहा है कि किसी भूखंड का विक्रय वहां का राजा अथवा ग्राममहत्तर स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकते थे। इसके लिए दोनों की अनुमति एवं सहमति आवश्यक थी। राधा गोविन्द बसाक का मानना है कि ग्रामवासियों का गांव की भूमि पर सामूहिक स्वामित्व होता था और राजा उस भूमि से केवल न्यायोचित कर आदि प्राप्त करने का ही अधिकारी होता था।⁴² रमेश चंद्र मजुमदार⁴³ और ए०एस० अल्टेकर⁴⁴ ने भी मोटे तौर पर बसाक के उपर्युक्त मत का समर्थन किया है। धर्मादित्य के एक ताम्रपत्राभिलेख में बताया गया है कि ग्राम की जमीन के बिकने पर राजा को विक्रय मूल्य का षष्ठांश मिलता था और शेष 5/6 भाग ग्रामसमिति के पास जाता था।⁴⁵

परंतु वास्तव में यह बात ग्राम के चरागाहों, पोखरों, कुछ सीमा तक वनों और मार्गों पर ही लागू थी। कुछ भूखंडों पर राजा तथा ग्रामीणों, दोनों का ही अधिकार होता था। बेकार पड़ी भूमि में राजा की इच्छानुसार ही सामूहिक स्वामित्व लागू होता था। जिस भूमि को बेचने में कृषक के बजाय ग्रामबृद्धों की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक था, उस पर गांव का सामूहिक स्वामित्व रहा होगा।

राजस्व-व्यवस्था

गुप्तोत्तर काल में अधिकतर लेखकों ने मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि प्राचीन ग्रंथों पर टीका करके राजस्व के सिद्धान्तों का ऐसा प्रतिपादन किया जिससे कि वे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल हो सके। लक्ष्मीधर (1100-1150 ई०) ने कृत्यकल्पतरु में टीका के रूप में लिखा है कि करों के बिना राज्य का अस्तित्व नहीं रह सकता।

विवेच्य काल के टीकाकार मेधातिथि, गोविन्दराज और कुल्लूकभट्ट मनु⁴⁶ के इस विचार से सहमत हैं कि राजा को सामान्य स्थिति में भूराजस्व किसानों से उपज का 1/8 भाग और आपात स्थिति में 1/4 भाग लेना चाहिए। लक्ष्मीधर ने भी कृत्यकल्पतरु में इसी मत की पुष्टि की है।⁴⁷ मित्रमिश्र ने भी लिखा है कि राजा को परती भूमि (खिल) की उपज का 1/10 भाग, वर्षा ऋतु में होने वाले धान्यों अर्थात् चावल व दालों आदि पर 1/8 भाग और वसन्त में होने वाले अनाजों अर्थात् गेहूं और जौ पर उपज का 1/6 भाग कर के रूप में लेना चाहिए। इस प्रकार इस काल में भाग के रूप में अधिक से अधिक उपज का 1/6 भाग लिया जाता था। पूर्वमध्य काल में भी ऐसी भूमि पर कर नहीं लिया जाता था जिस पर खेती नहीं की जा सकती थी।⁴⁸

अभिलेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि परती भूमि की उपज में राजा कम भूराजस्व लेता था।⁴⁹ लेख-पद्धति के अनुसार ऊर्ध्व-खिल भूमि की उपज में प्रति विंशोपक में 16 द्रम्म, खिल भूमि की उपज में 10 द्रम्म प्रति विंशोपक और जिसमें बहुत दिन से खेती न की गई हो ऐसी भूमि की उपज में राजा को कोई भूराजस्व नहीं लेना चाहिए। मकान बनाने की भूमि (वास्तु) पर कृषि भूमि से अधिक भूराजस्व लिया जाता था।⁵⁰

पूर्वमध्यकालीन दान-पत्रों में सबसे अधिक भाग-भोग-कर शब्दावली का उल्लेख मिलता है। गाहड़वाल, पाल, गुर्जर-प्रतिहार, परमार, चौलुक्य, कलचुरि, चन्देल, सोमवंशी और गाहड़वालों के सामंतों के अभिलेखों में भी इन करों का उल्लेख है।

बी०पी० मजूमदार का मत है कि भाग का अर्थ इस काल में भी भूराजस्व रहा। इस काल में कर का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं रहा।⁵¹ सभी प्रकार के टैक्सों के लिए कर शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। गाहड़वाल और चन्देल राजाओं के अभिलेखों में कर किसी विशिष्ट टैक्स के अर्थ में नहीं आया।

पाल राजाओं के दान-पत्रों में भाग-भोग कर के स्थान पर केवल कर शब्द का प्रयोग हुआ है। देवपाल के मुंगेर ताम्र-लेख में कर शब्द का प्रयोग उन सभी करों के अर्थ में हुआ है।⁵² जो माल के रूप में लिए जाते थे।

कुछ अभिलेखों में हिरण्य और भाग-भोग-कर⁵³ का प्रयोग अलग-अलग हुआ। हिरण्य नकद कर था और भाग-भोग-कर माल के रूप में दिए जाने वाला कर। अभयगणि के अनुसार भोग का अर्थ ऐसी सामग्री थी जो विशिष्ट अवसरों पर राजा को भेंट की जाती थी। सर्वज्ञनारायण ने मनुस्मृति की टीका में लिखा है कि राजा को प्रतिदिन फल, फूल, शाक, घास आदि के रूप में जो भेंट दी जाती है वही भोग कहलाती है। लल्लनजी गोपाल के अनुसार भोग का तर्कसंगत अर्थ वे समय-समय पर दी जाने वाली वस्तुएं जैसे कि फल, फूल, ईंधन आदि थी जो प्रजा राजा को देती थीं।

हिरण्य का उल्लेख गुप्तोत्तर काल के अधिकतर अभिलेखों में मिलता है जिन अभिलेखों में धान्य और हिरण्य दोनों शब्दों का उल्लेख है वहां हिरण्य का अर्थ नकद धन में दिया जाने वाला कर था। लल्लनजी गोपाल के अनुसार यह कर इकट्ठा गांव के प्रत्येक किसान से नकद लिया जाता था।⁵⁴

दशापराध जुर्माने थे जो गांव वालों से दस अपराधों के लिए वसूल किये जाते थे। पाल राजाओं⁵⁵ और कमायू⁵⁶ के इस अभिलेख में दशापराधिक नामक सरकारी अधिकारी का उल्लेख मिलता है। यह अधिकारी जुर्माना वसूल करता होगा और उन जुर्मानों की आय अनुदान-ग्राहियों को मिलती होगी।

लेख पद्धति के दस्तावेजों से ऐसा अनुमान होता है कि अधिकतर कर माल के रूप में लिए जाते थे। राजतरंगिणी और लोकप्रकाश से ज्ञात होता है कि अधिकतर भूराजस्व अनाज की खारियों में वसूल किया जाता था।⁵⁷ पूर्वी भारत में कुछ किसान माल के रूप में और कुछ नकद धन के रूप में भूराजस्व देते थे। लेख पद्धति में 40 कलसी और 4 मटके भोग के रूप में देने का वर्णन मिलता है।⁵⁸ बंगाल में अधिकतर भूराजस्व नकद धन के रूप में देने की प्रथा लोकप्रिय हाती जा रही थी। परंतु राजभोग माल के रूप में ही किया जाता था।

निष्कर्ष

विवेच्य काल में कर और बलि का अलग करों के रूप में उल्लेख नहीं मिलता परंतु अनेक नये करों और उपकरणों के लगाए जाने से जनता को निर्वाह करना कठिन हो गया होगा क्योंकि वस्तुओं पर कर लगने से इसका मूल्य भी बढ़ जाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. वैदिक इंडेक्स, 1, पृ० 245-46
2. इंडियन विलेज कम्युनिटीज, पृ० 98-139, 362
3. हिन्दू पोलिटी, पृ० 343 तथा आगे
4. पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन एशियंट इंडिया, पृ० 179
5. अग्रेरियन सिस्टम, पृ० 102 तथा आगे
6. एल. गोपाल, हिस्टरी ऑफ एग्रीकल्चर, पृ० 42 तथा आगे
7. पुष्पा नियोगी, कंट्रीव्यूशन्स टु इकानामिक हिस्टरी, पृ०-74
8. राजतरंगिणी, 4/628
9. बृहन्नारदीय, 38/86
10. युक्तिव्यक्तिप्रकरण, इंद्रोडकशन, पृ०-84

11. गौतम, 2/3, 35 की टीका, बी.एन. यादव, सोसाइटी ऐंड कल्चर, पृ०-255
12. यादव, पूर्वोद्धृत, पृ०-256
13. कृत्यकल्पतरु, दान, पृ० 191, व्यवहार, पृ०-18
14. अग्नि, 70/6, 173/44, 211/13-15
15. मनु, 8/99 की टीका
16. राजतरंगिणी, 4/155 तथा आगे
17. नारद, 4/42 की टीका, धर्मकोश 1, पृ० 949 पर उद्धृत
18. राजां तु करग्रहणमात्रं त्वं तु तद भौमिकानाम।
19. जैमिनी मीमांसासूत्र, 6/7/3 की टीका।
20. गोपाल, इकानामिक लाइफ, पृ०-6
21. संदेख अभिलेख, वही, 4, पृ० 76-81
22. गोपाल, इकानामिक लाइफ, पृ०-7
23. अली हिस्टरी ऑफ इंडिया, पृ० 137
24. इकानामिक कंडीशन आफ एशियंट इंडिया, पृ०-56
25. हिन्दू पोलिटी, 2, पृ०-174
26. पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन एशियंट इंडिया, पृ०-179
27. सोसाइटी ऐंड कल्चर, पृ०-252
28. नरेन्द्रधन- शब्देन भूमिरुक्ता किल नरेन्द्राणां भूमिरेव धनमित्यतः। स्त्री नरेन्द्रधने विंशति वर्षैरपि न नश्यत इति-कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकांड, पृ० 186 पर उद्धृत
29. द्रष्टव्य, आर.सी.पी. सिंह, किंगशिप इन नार्दन इंडिया, पृ० 338-40
30. भूमिं दत्त्वा स्वत्वनिवृत्तिं कृत्वा। याज्ञ, 1/318 की टीका
31. क्षेत्रं त्रिपुरुषं यस्यादगृह वा स्यात्क्रागतं। राजा प्रसादादन्यत्र न तो भोगः परं नयेत। व्यवहारकांड, पृ० 459 पर उद्धृत
32. वही, पृ० 460 पर उद्धृत
33. यादव, पूर्वोद्धृत, पृ०-253
34. भारतीय सांतवाद, पृ०-129
35. सचौ, अध्याय, 67, पृ०-149
36. ए.इं 20, पृ० 23-25
37. वही, 22, पृ० 115-20
38. 'भूमिदान' शीर्षक में देखिए
39. राजतरंगिणी, 8/2226
40. राजबली पांडेय हिस्टोरिकल ऐंड लिटरेरी इंस्क्रीप्शन्स, पृ० 162-66
41. वही, पृ० 167-76
42. द्रष्टव्य, मैती, इकानामिक लाइफ, पृ०-30
43. कारपोरेट लाइफ, पृ० 186
44. वाकाटक गुप्त एज, पृ०-333
45. इ.ऐं. 1910, पृ०-191
46. मनु 10. 118 की टीका में।
47. लक्ष्मीधर-कृत्यकल्पतरु राज धर्म काण्ड गा० ओ० सी० सं० सी, पृ० 89.
48. वैधदेव का कमौली लेख, एपि० इंडि० 19, पृ० 121 टिप्पणी 3.
49. गुप्तकालीन दामोदरपुर ताम्रलेख।
50. 1234 ई० का दामोदरदेव का मेहर दानपत्र।

51. बी० पी० मजूमदार-लैड रेविन्यू इन अर्ली मेडिवल इण्डिया, पृ० 21 के आगे।
52. एपि० इंडि० 18, 304-07, इंडि० एंटी० 21. 256.
53. रो० नियोगी, हिस्ट्र ऑफ दि गाहड़वाल डायनास्टी, पृ० 168.
54. ल० गोपाल-इकनॉमिक लाइफ, पृ० 39.
55. एपि० इंडि० 17 पृ० 321, इंडि० एंटी० 15, पृ० 306.
56. इंडि० एंटी० 25, पृ० 18.
57. राजतरंगिणी अनुवाद स्टीन 2, पृ० 328 के आगे।
58. लेख पद्धति, पृ० 9.